उन्मेष

(७)

रास पूर्णिमा (वर्ष - २००८)

अध्यात्म विषयक आलोचना चक्र में श्रीश्रीमाँ द्वारा एक जिज्ञासु भक्त के प्रश्नों के उत्तर :

प्रश्न : साधक के अन्तर में तत्त्वज्ञान कब स्फुरित होता है?

श्रीश्रीमाँ : जब स्थिर बुद्धि और बोधि का समन्वय हृदय में होता है। उस समन्वय से ही साधक-योगी के अन्तर में तत्त्वज्ञान स्फुरित होता है। जो योगी अपने अन्तर-स्थित अनुभव का ठीकठीक समन्वय करने में सक्षम होते हैं, वास्तव में, वे ही वेदज्ञ या ब्रह्मज्ञ उपाधि धारण करने के अधिकारी होते हैं। हृदय में प्राणों के स्पन्दन की स्थिरत्व-अवस्था न होने तक योगी साधक इस अवस्था में उपनीत होने में सक्षम नहीं होते। आभासित अनुभव की सहायता से योगी के अन्तर में सत्यज्ञान स्फुरित नहीं होता। एकमात्र हृदय में स्थिति ही सत्यस्वरूप के प्रकृत ज्ञान-प्राप्ति में योगी की सहायक होती है। ऐसे प्रकृत प्राज्ञ ज्ञान, प्राज्ञ तत्त्वज्ञ योगियों को ही प्रकृत 'शास्त्र-विद्' कहा जाता है।

प्रश्न : हृदय में बुद्धि और बोधि का समन्वय कैसे सम्भव है?

श्रीश्रीमाँ : गुरोपदिष्ट पन्था में प्राण की साधना या क्रियायोग रूपी ब्रह्मविद्या की साधना करते-करते योगी साधक का हृदयपद्म जागृत एवं उन्मुक्त हो जाता है। फिर साधना और भी परिपक्व होने पर हृदय में प्राणों की गति स्थिरत्व प्राप्त होकर योगी को आत्मस्थ अवस्था में उपनीत करती है। इस अवस्था में योगी की बुद्धिशक्ति एक अटल स्थिर अवस्था प्राप्त करती है एवं उस प्राज्ञ बुद्धि की सहायता से योगी विश्व-ब्रह्माण्ड के सर्वव्यापी तत्त्व के विषय में उपलब्धित सत्यज्ञान से प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। वास्तव में उपलब्धित सत्यज्ञान को ही 'बोधि', या 'सम्बोधि' कहा जाता है। बुद्धि एवं बोधि का समन्वय, आत्मकर्म करते-करते ही, योगी साधकों के अन्तर में स्फुरित तो हो जाता है परन्तु यह अवस्था पाने के लिए गुरुकृपा का प्रयोजन है। इसका कारण यह है कि साधक सद्गुरु शक्ति एवं कृपा से ही हृदय में स्थिति लाभ करने में सक्षम होता है। सद्गुरु की कृपा शक्ति के बिना साधक हृदय में बुद्धि एवं बोधि का समन्वय होना सम्भव नहीं है। पूर्व जन्मार्जित साधना के संस्कार प्रबल रहने पर भी अध्यात्म-जगत् में साधक सद्गुरु बिना एक कदम भी अग्रसर नहीं हो सकता। इसीलिए अभ्यासकाल में गुरुकृपा से चित्त अन्तर्मुखीन हो जाने से ही योगी साधक की योग विद्या एकाग्र होती जाती है एवं उसी एकाग्रचित्त से स्वभावतः योगी हृदय में स्वरूप या तत्त्ववस्तु का स्फुरण होता है। तत्त्ववस्तु के स्फुरण से योगी क्रमशः प्रज्ञान अवस्था प्राप्त करते हैं। प्रज्ञान यानि दृष्टि की स्वच्छता; अनुभव के मध्य तब कहीं भी स्वतोविरोध नहीं रहता। तब ज्ञेय, ज्ञाता के संग एकाकार हो जाता है; तब योगी जो ज्ञान करता है वह वही बनकर (उसी स्वरूप में) ही ज्ञान करता है। अतः ज्ञेय के संग ज्ञाता की एकात्मता के बोध का जो आनन्द होता है, वही ब्रह्मानन्द है और वही आत्मरमता अवस्था है। यही है प्रज्ञान का सहज एवं स्वाभाविक धर्म। यह अवस्था ही भगवद् प्रसाद कहकर परिगण्य है। इस अवस्था में सर्वाभाव में सर्वावस्था में योगी भगवत्सत्ता का प्रसाद पाते रहते हैं।

प्रश्न : क्या बुद्धि एवं बोधि का समन्वय होने पर योगी-साधकों को कूटस्थ में दर्शनानुभूति होती है?

श्रीश्रीमाँ : बुद्धि एवं बोधि का समन्वय होने पर योगी साधक के कूटस्थ मध्य हृदय के चिदाकाश में अन्धकाराछन्न आकाश के वक्ष पर संवितरूपी अग्निस्फुलिंग (Flickers of fire) के स्पन्दित प्रकाश-रूप का दर्शन होता है। फिर क्रमशः युक्तावस्था में योगी को उस आकाश में और भी बहुत कुछ दर्शन एवं अनाहत नाद श्रवण होता है जो कि उपलब्धि सापेक्ष विषय है। हृदयाकाश में अग्निस्फुलिंग के उत्सस्थल को प्रगाढ़ ध्यान द्वारा भेद कर सकने पर बाद में योगी विष्णु परम-पद का सर्वदा दर्शन करने में सक्षम होते हैं।

उन्नत क्रियावान, सिद्ध वासुदेव मंत्र के परावस्था की क्रिया की सहायता से एवं तत्संग सद्गुरु की कृपाशक्ति के कारण हृदय-कमल के मध्य आकाश में उपनीत होने में सक्षम होते हैं। तब योगियों के कूटस्थ में उपरोक्त उपलब्धि सकल स्फुरित होती है। *(श्रीश्रीमाँ सर्वाणी द्वारा रचित बंगला ग्रंथ 'उन्मेष' से उद्धृत)*

हिन्दी अनुवाद – मातृचरणाश्रिता श्रीमती सुशीला सेठिया